EDU Journal of International Affairs and Research (EJIAR), ISSN: 2583-9993
Volume 4, Issue 3, July-September, 2025, Available at: https://edupublications.com/index.php/ejiar

केन्द्र राज्य संबंधों के बीच विवादस्पद मुद्दे

विजय जांगिड[1], डॉ. सीमा हटीला[2]

[1]शोधार्थी, राजनीति विज्ञान विभाग, जयनारायण व्यासविश्वविद्यालय, जोधपुर
[2]सहायक आचार्य (राज. विज्ञान विभाग), महिला स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जोधपुर (राज.)

सारांश

केन्द्रीय और क्षेत्रीय सरकारों में शक्ति के केन्द्र के आधार पर विश्व की राजनीतिक प्रणालियों का विभाजन के मुख्यतः संघीय और एकात्मक शासन प्रतिमानों के रूप में किया गया है। एकात्मक शासन प्रतिमान में शासन की शक्तियों का केन्द्र एक सर्वोच्च शक्ति के हाथ में होता है। संघीय शासन प्रतिमान में शासन की शक्तियों का बंटवारा सन्तुलित रूप से केन्द्र व राज्यों के मध्य होता है। इन शक्तियों का विभाजन संविधान के अनुसार होता है। संविधान में लिखित शक्तियां ही केन्द्र और राज्यों को शक्ति प्रदान करती है। संघीय शासन व्यवस्था के लिए एक लिखित कठोर संविधान की आवश्यकता होती है और साथ ही स्वतन्त्र व निष्पक्ष न्यायालयों की भी।

भारत के संविधान निर्माताओं के समक्ष दुविधा थी कि संविधान का स्वरूप संघात्मक रखा जाए या एकात्मक परन्तु संविधान निर्माताओं ने मध्यम मार्ग अपनाया और संविधान को बाहरी रूप से संघात्मक और आन्तरिक रूप एकात्मक रूप दिया था। भारतीय संविधान में निर्माता भारत में संघात्मक शासन की स्थापना करना चाहते थे परन्तु संविधान में कहीं भी संघ (Federation) शब्द का प्रयोग नहीं किया गया। भारतीय संविधान में संघ के स्थान पर 'राज्यों का संघ' शब्द का प्रयोग किया गया है। इस शब्द के प्रयोग का यह अर्थ है कि राज्य आपस में समझौता करके संघ का निर्माण नहीं करते है इसलिए किसी भी राज्य को संघ से पृथक होने का भी अधिकार नहीं है। भारत के संविधान में संघीय शासन व्यवस्था को अपनाया गया है क्योंकि संविधान निर्माताओं ने देश के बड़े आकार एवं सामाजिक– सांस्कृतिक विविधताओं को ध्यान में रखकर संविधान को तैयार किया। संविधान सभा का मत था कि संघीय व्यवस्था से न केवल सरकारों की शक्ति में बढोतरी होगी बल्कि राज्यों को काम करने की स्वतन्त्रता में भी वृद्धि होगी एवं भारत एक राष्ट्र के रूप में भी उभरेगा।

भारत का संघवाद कनाडा के संघ व्यवस्था से प्रेरित है और भारत के केन्द्र राज्य सम्बन्ध संघवाद पर ही आधारित है भारत के संघवाद में केन्द्र अपनी स्वतन्त्र भूमिका निभाता है और राज्य अपनी स्वतन्त्र भूमिकाएं निभातें हैं। संधवाद की शुरुआत अमेरिका संविधान से मान सकते हैं।

संघीय व्यवस्था में केन्द्रीय शासन और राज्यों के शासन, संविधान से ही शक्तियों को प्राप्त करते हैं इसका अर्थ है, संघीय शासन व्यवस्था में सर्वोच्च संविधान है। केन्द्र सरकार और क्षेत्रीय सरकारों को संविधान के अनुसार ही काम करना पड़ता है। डॉ. भीमराव अम्बेडकर के शब्दों में भारत का संविधान– "यह एक संघीय व्यवस्था का संविधान है क्योंकि यह एक दोहरे शासन प्रणाली की स्थापन करता है, जिसमें केन्द्र में संघ की सरकार तथा उसके चारों ओर राज्य की सरकारें है, जो संविधान द्वारा निर्धारित शक्तियों को प्राप्त करती है।"[1]

भारत में केन्द्र राज्य सम्बन्ध अंग्रेजी शासन की देन है जिसके द्वारा संवैधानिक विकास हुआ है। धीरे धीरे शक्तियां केन्द्र द्वारा राज्यों की दी जाने लगी इसकी शुरुआत 1861 में हुई थी। डी.डी. बसु के अनुसार. "भारत का संविधान न तो पूर्णरूप से एकात्मक है और न ही पूर्ण रूप से संघात्मक, बल्कि भारत का संविधान इन एकात्मक और संघात्मक का मिश्रण है।"[2] भारतीय संविधान में एकात्मक वाले गुण जैसे– राज्यपाल की नियुक्ति, राष्ट्रहित में राज्य सूची के विषयों पर विधि बनाने की संसद की शक्ति, नये राज्यों के निर्माण एवम् वर्तमान राज्यों के क्षेत्रों की सीमाओं या नामों में परिवर्तन करने की शक्ति केन्द्र के पास, आपात उपबन्ध से सम्बन्धित शक्तियां भी केन्द्र के पास है। भारतीय संविधान में संधात्मक के गुण भी विद्यमान जैसे– लिखित संविधान, शक्तियों का विभाजन, संविधान की सर्वोच्चता, न्यायपालिका की स्वतंत्रता तथा सर्वोच्चता और संविधान की परिवर्तनशीलता आदि।

नार्मन डी. पामर के अनुसार – "भारत गणतन्त्रीय संघीय देश है जिन्होंने संघीय स्वरूप को अपने अनुसार, ढाला है।"[3] भारत के संविधान के कई स्रोत है परन्तु जहाँ–जहाँ से महत्वपूर्ण तथ्य संविधान निर्माताओं को अच्छे लगे और जो भारतीय परिवेश के अनुसार थे को संविधान में जोड़ दिये।

"संघीय शासन व्यवस्था में राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दोनों ही स्तरों पर सरकारों की सत्ता का स्रोत एक ही है। केन्द्र व क्षेत्रीय सरकारों की अपनी अपनी शक्तियां होती है और उन शक्तियों के प्रयोग के लिए एक दूसरे पर आश्रित भी नही रहते हैं और न ही एक दूसरे के अधिकार क्षेत्र पर अतिक्रमण कर सकतें हैं। इन दोनों ही स्तर की सरकारों का शक्ति प्रयोग में नागरिकों से सीधा सम्बन्ध होता है और नागरिकों में केन्द्रीय और क्षेत्रीय सरकारों के प्रति निष्ठा होती है।"[4]

"संघीय शासन से तात्पर्य शक्तियों के विभाजन की विधि से है जिसमें केन्द्रीय और क्षेत्रीय सरकारें अपने क्षेत्र में स्वतन्त्र और समकक्ष हो।"[5]

"संघीय शासन में संघ सरकार की शक्तियों को निश्चित कर दिया जाए और शेष शक्तियों को क्षेत्रीय सरकारों के लिए छोड़ देना ही पर्याप्त नहीं है यह भी आवश्यक है कि दोनों ही सरकारों के अधिकार क्षेत्र विभाजित कर अवशिष्ट शक्तियां राज्य सरकारों के पास रखी जाये।"[6]

संघीय शासन व्यवस्था में सभी सरकारें स्वतन्त्र होती है और अपने–अपने क्षेत्र में विकास का कार्य करवाती है और सभी राजनीतिक दलों के नेता एक होकर जनता के लिए विकास कार्य करते हैं। "संघीय व्यवस्था अलग–अलग राजनीतिज्ञों को एक ऐसी बड़ी व्यवस्था में संगठित व व्यवस्थित करती है, जिसमें हर राजनीतिक व्यवस्था अपनी आधारभूत राजनीतिक अवस्था में बनी रहती है।"[7]

संघीय सरकार में द्विगुणी है जो विविधता का समायोजन करती है और शक्तियों के केन्द्रीय व क्षेत्रीय विभाजन पर आधारित होती है।"[8] डॉ. सुभाष के अनुसार – "भारतीय सविधान दो तरह की शासन व्यवस्था की स्थापना करता है। सरकारों की भी दो तरह की श्रेणियां है संघ की सरकार और क्षेत्रीय सरकारें। संविधान से संघ सरकार और राज्य की सरकारों के बीच शक्तियों का विभाजन किया है आंतरिक रूप से संविधान एकात्मक है और बाहरी रूप में संघात्मक है इन सब गुणों के बावजूद भारतीय संविधान एकात्मक है।"[9]

संकेताक्षरः–केन्द्र–राज्य संबंध, राजनीति, वित्तीय, प्रशासनिक, न्यायिक, भारतीय संविधान

प्रस्तावनाः–संघीय व्यवस्था का सबसे महत्वपूर्ण तत्व शक्तियों और सता का विभाजन केन्द्रीय और राज्य सरकारों के मध्य है। संघीय व्यवस्था में राजनीतिक शक्तियों का कुछ अरातनीतिक शक्तियों से समन्वय होता है।15 अगस्त 1947 को आजादी के बाद 26 जनवरी 1950 को भारतीय संविधान लागू होने के साथ ही भारत एक गणतंत्रात्मक राष्ट्र बन गया तथा भारतीय संविधान के अनुच्छेद एक में भारत को राज्यों का एक संघ घोषित किया गया और देश में संघात्मक शासन प्रणाली की विशेषताओं के साथ–साथ एकात्मक शासन प्रणाली की विशेषताओं को भी अपना लिया गया।[10]

संघवाद सरकार का वह रूप होता है। जिसमें देश के भीतर सरकार के कम से कम दो स्तर मौजूद होते है – पहला केन्द्रीय स्तर पर और दूसरा स्थानीय या राज्य पर। भारत की बात करें तो यहॉ संघवाद को स्थनीय, राज्य स्तर और केन्द्रीय स्तर के मध्य अधिकारों के वितरण के रूप में परिभाषित किया गया है।[11]

केन्द्र राज्य संबंधों के बीच विवादस्पद मुद्देः–

विगत सात दशकों की यदि हम बात करें तो हमारे देश में केन्द्र और राज्यों के बीच संबंधों का स्वरूप बदलता रहा है जबकि संविधान द्वारा स्थापित संघीय योजना अपरिवर्तित रहीं है। राज्यों की ओर से समय–समय पर अधिक से अधिक स्वायत्तता की मांग और संघीय योजना में परिवर्तन के विभिन्न सुझावों के बाद भी संवैधानिक प्रावधानों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया किंतु भारत की बहुदलीय प्रणाली ने संघीय

व्यवस्था के कार्यान्वयन को बहुत ज्यादा प्रभावित किया, केन्द्र और राज्यों में सत्ता परिर्वतन के साथ – साथ केन्द्र–राज्य संबंधों में भी बदलाव आता रहा है।[12]

1950 से 1967 तक सम्पूर्ण देश में (कुछ राज्यों को छोड़कर) कांग्रेस का एकछत्र शासन रहा नेहरू के करिश्माई व्यक्तित्व और देश विदेश में लोंगों को आकर्षित करने की उनकी चुम्बकीय क्षमता ने भारत को राजनीतिक हलकों में ऐसी स्थिति में पहुँचा दिया था कि दूसरो को इससे ईष्या होती थी। नेहरू के प्रभावशाली नेतृत्व के कारण ही केन्द्र और राज्यों में मधुर संबंध थे जिसमे नेहरू का प्रभाव था, इसलिए इसे केन्द्रीकृत संघवाद का काल कहा जाता है। यद्यपि 1964 में नेहरू की मृत्यु के बाद जनता और कांग्रेस पार्टी को धक्का लगा था। उस वक्त पैदा हुए शून्य को उनकी पुत्री इन्दिरा गांधी ने काफी हद तक भर दिया था लेकिन उनके कार्यकाल में ही कांग्रेस के पतन की प्रक्रिया शुरू हो गयी थी और अतंतः उनके समय में ही पार्टी टूट गयी थी। कांग्रेस पार्टी के विघटन से एक पार्टी की प्रधानता वाली प्रणाली खत्म हो गई और कई तरह की नई पार्टियों का जन्म हुआ। भारतीय राजनीति में सरकार के ढाँचे तथा कामकाज को नए आयाम देने वाली बहुदलीय व्यवस्था का आगाज प्रारम्भ हुआ।

1950 से 1967 तक सम्पूर्ण देश में (कुछ राज्यों को छोड़कर) कांग्रेस का एकछत्र शासन रहा नेहरू के करिश्माई व्यक्तित्व और देश विदेश में लोंगों को आकर्षित करने की उनकी चुम्बकीय क्षमता ने भारत को राजनीतिक हलकों में ऐसी स्थिति में पहुँचा दिया था कि दूसरो को इससे ईष्या होती थी। नेहरू के प्रभावशाली नेतृत्व के कारण ही केन्द्र और राज्यों में मधुर संबंध थे जिसमे नेहरू का प्रभाव था, इसलिए इसे केन्द्रीकृत संघवाद का काल कहा जाता है। यद्यपि 1964 में नेहरू की मृत्यु के बाद जनता और कांग्रेस पार्टी को धक्का लगा था। उस वक्त पैदा हुए शून्य को उनकी पुत्री इन्दिरा गांधी ने काफी हद तक भर दिया था लेकिन उनके कार्यकाल में ही कांग्रेस के पतन की प्रक्रिया शुरू हो गयी थी और अतंतः उनके समय में ही पार्टी टूट गयी थी। कांग्रेस पार्टी के विघटन से एक पार्टी की प्रधानता वाली प्रणाली खत्म हो गई और कई तरह की नई पार्टियों का जन्म हुआ। भारतीय राजनीति में सरकार के ढाँचे तथा कामकाज को नए आयाम देने वाली बहुदलीय व्यवस्था का आगाज प्रारम्भ हुआ।

1950 से 1967 तक सम्पूर्ण देश में (कुछ राज्यों को छोड़कर) कांग्रेस का एकछत्र शासन रहा नेहरू के करिश्माई व्यक्तित्व और देश विदेश में लोंगों को आकर्षित करने की उनकी चुम्बकीय क्षमता ने भारत को राजनीतिक हलकों में ऐसी स्थिति में पहुँचा दिया था कि दूसरो को इससे ईष्या होती थी। नेहरू के प्रभावशाली नेतृत्व के कारण ही केन्द्र और राज्यों में मधुर संबंध थे जिसमे नेहरू का प्रभाव था, इसलिए इसे केन्द्रीकृत संघवाद का काल कहा जाता है। यद्यपि 1964 में नेहरू की मृत्यु के बाद जनता और कांग्रेस पार्टी को धक्का लगा था। उस वक्त पैदा हुए शून्य को उनकी पुत्री इन्दिरा गांधी ने काफी हद तक भर दिया था लेकिन उनके कार्यकाल में ही कांग्रेस के पतन की प्रक्रिया शुरू हो गयी थी और अतंतः उनके समय में ही पार्टी टूट गयी थी। कांग्रेस पार्टी के विघटन से एक पार्टी की प्रधानता वाली प्रणाली खत्म हो गई और कई तरह की नई पार्टियों का जन्म हुआ। भारतीय राजनीति में सरकार के ढाँचे तथा कामकाज को नए आयाम देने वाली बहुदलीय व्यवस्था का आगाज प्रारम्भ हुआ।

1967 के आम चुनाव में दलीय दृष्टि से भारतीय राजनीति का नक्शा बदला गया कांग्रेस का एकछत्र शासन समाप्त हुआ और आठ राज्यों में गैर कांग्रेसी मिश्रित सरकारों का निर्माण हुआ । इस चुनाव में लोकसभा की कुल 520 सीटों के लिए चुनाव हुए। पिछले तीन आम चुनावों में कांग्रेस को करीब तीन चौथई सीटें मिलती रही थी, लेकिन इस बार उसके खाते में मात्र 283 सीटें आयीं यानी बहुमत से मात्र 22 सीटें ज्यादा, उसे प्राप्त वोटों के प्रतिशत में भी करीब पाँच प्रतिशत की गिरावट आई। आमतौर पर उसके दो–तीन प्रत्याशियों की ही जमानत जब्त होती रही थी, लेकिन 1967 में उसके सात उम्मीदवारों को जमानत गंवानी पड़ी। गुजरात, राजस्थान और ओड़िशा में स्वततंत्र पार्टी ने उसे झटका दिया तो उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश और दिल्ली में जनसंघ ने। बंगाल और केरल में उसे कम्युनिस्टों से कड़ी चुनौती मिली। बंगाल, पंजाब, तमिलनाडु आदि राज्यों से स्वायत्तता की माँग तो उठी किन्तु केन्द्र पर उसका कोई असर नही हुआ । साझा सरकारें आपसी मतभेदों के कारण जल्द ही बिखर गई।[13] 1967 से 1971 का काल कमजोर केन्द्र और कमजोर राज्यों वाले संघ का चित्र प्रस्तुत करता है। केन्द्र में गुटों में बँटी कांग्रेस सशक्त नेतृत्व की तलाश में थी और राज्यों में साझा सरकारें जीवित रहने के लिए प्रयासरत थी। 1967–1971 का काल केन्द्र और राज्यों के बीच गम्भीर टकराव का काल होता, यदि राज्यों में स्थिर सरकारें होती या केन्द्र में कांग्रेस पार्टी आन्तरिक संकट का शिकार न होती। केन्द्र और राज्यों के बीच विभिन विवादों के बावजूद दोनों ही अपनी–अपनी कमजोरियो एंव मजबूरियों के कारण एक दूसरे से टक्कर लेने की स्थिति में न थी। अतः इस काल (1967 – 71) को कुछ लोगों ने सहयोगी संघवाद का काल कहा है।[14]

1971 से 1977 का काल एकात्मक संघवाद का युग कहा जाता है क्योंकि 1971 के चुनाव में इन्दिरा गांधी के नेतृत्व में पूरे देश में एक बार फिर से कांग्रेस पार्टी का राजनैतिक एकाधिकार स्थापित हो गया था। श्रीमती गांधी ने चुनाव में न केवल विपक्षी दलो को पराजित किया, बल्कि कांग्रेस के अन्दर से उभरी नई पार्टी (कांग्रेस संगठन) को भी बुरी तरह पराजित किया। श्रीमती गांधी एक सशक्त नेता के रूप में उभरी जिसका

पार्टी संगठन और सरकार दोनों पर वर्चस्व स्थापित हो गया। 1971 से 1977 का दौर केन्द्र–राज्य संबंधों की दृष्टि से सबसे कठिन दौर माना जाता है। इस दौर में अनेक असंवैधानिक कार्यो को अंजाम दिया गया। संघीय व्यवस्था एकात्मक सरकार में परिवर्तित होती नजर आयी । देश एक गंभीर संकट के दौर से गुजर रहा था।[15]

इसी बीच केन्द्रीय मंत्रिमंडल की सलाह पर राष्ट्रपति द्वारा 18 जनवरी 1977 को लोकसभा भंगकर दी गई। इसके साथ ही मार्च 1977 में छठीं लोकसभा के चुनावों की घोषणा कर दी गई। तय कार्यक्रम के अनुसार छठवीं लोकसभा के चुनाव मार्च 1977 में सम्पन्न हुए। जनता में इन चुनावों को लेकर बहुत उत्साह था। 19 महीनें के आपातकालीन अत्याचारों के बाद चुनावों की घोषणा जनता के लिए नई आजादी की तरह थी। भारत की जनता आपातकाल के अत्याचारों के लिए कांग्रेस पार्टी व इन्दिरा गांधी को दोषी मानती थी। जनता किसी भी तरह कांग्रेस को सत्ता से हटाना चाहती थी। यही कारण है, कि 1977 के चुनाव एकतरफा कांग्रेस विरोधी चुनाव थे। इन चुनावों में लोकसभा की कुल 542 सीटों में से दो माह पूर्व ही कई विपक्षी पार्टियों के विलय से बनी जनता दल को 270 तथा उसकी सहयोगी पार्टी कांग्रेस फॉर डेमोक्रेसी को 28 सीटें प्राप्त हुई। उत्तर भारत में कांग्रेस का प्रदर्शन अत्यंत खराब था, लेकिन दक्षिण भारत के राज्यों में कांग्रेस की स्थिति इतनी खराब नहीं थी। चुनाव के बाद केंद्र में जनता पार्टी की सरकार बनी यह आजादी के बाद भारत के राजनीतिक इतिहास में केंद्र में गठित पहली गैर कांग्रेसी सरकार थी मोरारजी देसाई प्रधानमंत्री बने तथा चौधरी चरण सिंह और जगजीवनराम दोनों को ही सरकार में उपप्रधानमंत्री बनाया गया परंतु जनता पार्टी में शामिल नेताओं के आपसी मतभेद तथा राजनीतिक महत्वाकांक्षाओं के कारण जनता पार्टी का पतन हो गया जबकि कांग्रेस कमजोर होने के बावजूद भी इंदिरा गांधी के नेतृत्व में एकजुट थी। कांग्रेस ने जनता पार्टी की आपसी खींचतान का फायदा लेते हुए मोरारजी देसाई की जनता पार्टी सरकार के विरुद्ध 1979 में अविश्वास का प्रस्ताव लोकसभा में प्रस्तुत कर दिया। मोरारजी देसाई को लगा कि उनकी पार्टी के सदस्य ही उनका साथ नहीं देंगे अतः उन्होंने अविश्वास प्रस्ताव पर मतदान की तिथि से पहले ही 16 जुलाई 1979 को प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया।[16] इस प्रकार जनता सरकार का पतन हो गया, तत्पश्चात कांग्रेस के समर्थन से 28 जुलाई 1979 को चौधरी चरण सिंह प्रधानमंत्री बन गए, लेकिन वे लोकसभा में अपना बहुमत कभी भी सिद्ध नहीं कर पाए। लोकसभा की बैठक के पहले दिन ही कांग्रेस ने अपना समर्थन वापस लेने की घोषणा कर दी थी। इसी बीच जनवरी 1980 में सातवीं लोकसभा चुनाव संपन्न हो गए और इंदिरा गांधी की पुनः जोरदार वापसी हो गई। 1980 के चुनावों में कांग्रेस को बड़ी सफलता मिली। लोकसभा की 542 सीटों में से कांग्रेस को 352 सीटें प्राप्त हो गई। कांग्रेस पार्टी ने इंदिरा गांधी के नेतृत्व में पुनः सरकार का गठन किया। 1984 में इंदिरा गांधी की हत्या के बाद राजीव गांधी को संसदीय दल का नेता नियुक्त किया गया था। 1984 में आठवीं लोकसभा के चुनावों में राजीव गांधी के नेतृत्व में कांग्रेस पार्टी को भारी सफलता प्राप्त हुई, लेकिन इसका प्रमुख कारण इंदिरा गांधी की हत्या से उपजी सहानुभूति को माना जाता है। अब तक के राजनीतिक इतिहास में लोकसभा में कांग्रेस को सबसे अधिक 415 स्थान प्राप्त हुए इसी भारी सफलता के बाद राजीव गांधी प्रधानमंत्री बने।[17]

राजीव गांधी ने जनता की अपेक्षा अनुरूप प्रगतिशील नीतियों की शुरुआत की। इनमें स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को मजबूत बनाने का प्रयास तथा कंप्यूटर तकनीकी व शिक्षा का विकास प्रमुख रूप से उल्लेखनीय है। सरकार द्वारा नई पहल करते हुए कई गंभीर समस्याओं के समाधान के प्रयास किए गए। ऐसे कुछ प्रयास हैं– 1985 में दलबदल विरोधी कानून, 1985 में ही पंजाब समस्या के समाधान हेतु राजीव गांधी लोंगोवाल समझौता, असम समस्या के समाधान लिए 1985 में असम समझौता, श्रीलंका में तमिल समस्या के समाधान हेतु 1987 का भारत श्री लंका समझौता आदि ये सभी साहसिक कदम थे, यद्यपि इन सभी में वांछित सफलता प्राप्त नहीं हुई। बाद में सरकार पर बोफोर्स तोप घोटाला तथा अन्य मामलो में भ्रष्टाचार के आरोप भी लगाए गए। इसका कांग्रेस सरकार में वित्त मंत्री रहे विश्वनाथ प्रताप सिंह ने भी विरोध किया तथा बाद में उन्हें कांग्रेस छोड़नी पड़ी। परिणाम यह हुआ कि 1989 तक आते–आते सरकार की लोकप्रियता घट गई तथा जनता में बदलाव की इच्छा प्रबल हो गई।[18]

EDU Journal of International Affairs and Research (EJIAR), ISSN: 2583-9993
Volume 4, Issue 3, July-September, 2025, Available at: https://edupublications.com/index.php/ejiar

1989 में नवीं लोकसभा के चुनाव हुए 1989 का लोकसभा चुनाव भारतीय राजनीति के इतिहास में खासा मुकाम रखता है क्योंकि यही से भारतीय राजनीति हमेशा के लिए एक अलग राह पर चल पड़ी और आज भी यह उसी राह पर सफर कर रही है। यहीं से भारतीय राजनीति में राजनीतिक अस्थिरता का दौर शुरू हुआ

जो 1999 तक चलता रहा। वर्ष 1989 से 1999 तक 10 साल में 5 बार लोकसभा चुनाव हुए। इस दौरान सिर्फ एक बार ही लोकसभा 5 वर्षों का अपना निर्धारित कार्यकाल पूरा कर सकी, दो बार दो—दो वर्ष में चुनाव कराए गए जबकि एक बार तो करीब 1 वर्ष के बाद ही चुनाव कराना पड़ा। देश में यूँ तो आम चुनाव हर 5 वर्ष में होता है लेकिन 1989 से 1999 के दौर के 10 वर्षों में 5 बार चुनाव हुए तथा छः प्रधानमंत्री बने।[19]

सन 1989 के आम चुनाव में नए—नए बने जनता दल के विश्वनाथ प्रताप सिंह के नेतृत्व में राष्ट्रीय मोर्चा की सरकार बनी, इन चुनावों में कांग्रेस की हार हुई। पाँच वर्ष पहले के चुनाव में 415 सीटें जीतने वाली कांग्रेस 197 सीटें ही हासिल कर सकी। वी.पी. सिंह की जनता पार्टी को 143 और भाजपा को 85 सीटें मिली। दूसरी बार केंद्र में गैर कांग्रेसी सरकार बनी जिसका मुखिया पूर्व कांग्रेसी ही था। पहली बार गठबंधन हकीकत बन कर उभरे बी. पी. सिंह के नेतृत्व में बनी सरकार को भाजपा तथा अन्य पार्टियों ने बाहर से समर्थन दिया। एक वर्ष के अंदर ही जनता दल में (वामदलों) फूट पड़ गई और जनता दल से अलग हुए चंद्रशेखर कांग्रेस के समर्थन से प्रधानमंत्री बने, लेकिन उनकी सरकार भी अधिक दिनों तक नहीं चल सकी और 1991 में लोकसभा के चुनाव कराए गए।[12] वास्तव में 1989 के बाद से केंद्र राजनीतिक दृष्टि से कमजोर होना शुरू हुआ। जनता दल की साझा सरकार परस्पर विरोधी विचारधाराओं के बीच समन्वय करने का एक असफल प्रयास था। 1991 में गठित नरसिंह राव की कांग्रेस सरकार अल्पमत की सरकार थी जिसने समझौते की नीति के सहारे पाँच वर्ष की अवधि पूरी की। 1991 के आम चुनाव के बीच में ही पूर्व प्रधानमंत्री राजीव गांधी की आतंकी हमले में मौत हो गई। कांग्रेस एक बार फिर बहुमत हासिल नहीं कर सकी उसे 232 सीटें मिली और पी. वी. नरसिंह राव के नेतृत्व में केंद्र में अल्पमत की सरकार बनाई गई जो पूरे पाँच वर्ष चली। पी. वी. नरसिम्हा राव लोकसभा में बहुमत नहीं होने के बावजूद पूरे पॉच वर्ष तक सरकारें चलाने वाले देश के पहले प्रधानमंत्री रहे।[20]

1996 के आम चुनाव में एक बार फिर किसी भी दल को लोकसभा में स्पष्ट बहुमत नहीं मिला। भाजपा 161 सीटों के साथ सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी और अटल बिहारी बाजपेई के नेतृत्व में उसने पहली बार केंद्र में सरकार बनाई लेकिन यह सरकार सिर्फ तेरह दिन ही चल सकी। दूसरी सबसे बड़ी पार्टी कांग्रेस ने सरकार बनाने से इंकार कर दिया और जनता दल को सरकार बनाने में बाहर से समर्थन दिया। पहले एच.डी. देवगौड़ा के नेतृत्व में सरकार बनी जो मुश्किल से एक वर्ष चली, इसके बाद इंद्र कुमार गुजराल प्रधानमंत्री बने, लेकिन उनकी सरकार भी एक वर्ष से ज्यादा नहीं चल सकी। देश में फिर से लोकसभा चुनाव 1998 में कराने पड़े। वर्ष 1998 में हुए चुनाव में भाजपा एक बार फिर सबसे बड़ी पार्टी के रूप में उभरी और भारतीय जनता पार्टी के नेतृत्व में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन की सरकार बनी लेकिन गठबंधन में विरोध के कारण अटल बिहारी वाजपेई की सरकार तेरह महीने तक ही चल सकी। अन्नाद्रमुक के समर्थन वापस लेने के बाद उनकी सरकार लोकसभा में एक मत से गिर गई।[21]

देश में 1999 में फिर से चुनाव हुए इस बार भी किसी भी दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिला, लेकिन इस चुनाव से देश में स्थिर साझा सरकारों का दौर शुरू हुआ। अटल बिहारी बाजपेई के नेतृत्व में राष्ट्रीय लोकतांत्रिक गठबंधन (24 दल) चुनाव से पूर्व बनाया गया था जिसे लोकसभा चुनाव में बहुमत प्राप्त हुआ तथा पार्टी के वरिष्ठ नेता अटल बिहारी वाजपेई तीसरी बार प्रधानमंत्री बने। इस सरकार ने अपना पाँच साल का कार्यकाल पूरा किया, ऐसा करने वाली यह देश की पहली साझा सरकार बनी।[22]

2004 में चौदहवीं लोकसभा के आम चुनाव में कांग्रेस पार्टी के नेतृत्व में बनाए गए संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन (सप्रंग) को बहुमत मिला और डॉ. मनमोहन सिंह देश के प्रधानमंत्री बने इसके बाद 2009 में पुनः पंद्रहवीं लोकसभा चुनाव में कांग्रेस के नेतृत्व वाले संयुक्त प्रगतिशील गठबंधन को बहुमत मिला और डॉ. मनमोहन सिंह फिर से देश के प्रधानमंत्री बने।[23]

2014 में सोलहवीं लोकसभा के आम चुनाव में मोदी लहर के चलते भारतीय जनता पार्टी को लोकसभा में 282 सीटें मिली। इस प्रकार 1989 के बाद पहली बार किसी पार्टी को लोकसभा में पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ। भारतीय जनता पार्टी के नेता नरेंद्र मोदी देश के प्रधानमंत्री बने। 2019 के सत्रहवीं लोकसभा चुनाव में पुनः भारतीय

जनता पार्टी को ही पूर्ण बहुमत प्राप्त हुआ उसे लोकसभा में 303 सीटें प्राप्त हुई और नरेंद्र मोदी लगातार दूसरी बार देश के प्रधानमंत्री बने।[24]

संदर्भ सूची

[1]. ऑस्टिन ग्रेजबिल, दि इण्डियन कॉन्स्टीट्यूशन कारनेर स्थेन ऑफ ए नेशन, आक्सफोर्ड, 1966 पृ.सं. 188

[2]. बसु डी.डी. भारत का संविधान : एक परिचय, वाधवा एण्ड कम्पनी, नई दिल्ली, 2005 पृ.सं 49

[3]. पानर डी नारमन, द इंडियन पॉलिटिकल सिस्टम, पैलेफिक अफेयर्स, यूनिवर्सिटी ऑफ ब्रिटिश कोलम्बिया, 1963 पृ. स 94

[4]. के.सी व्हीयर, फेडरल गवर्मेन्ट 4th एडिशन, न्यूयॉर्क, ओक्सफोर्ट यूनिवर्सिटी प्रेस लंदन 1963 पृ.स 10

[5]. सी. बी. गेना, तुलनात्मक राजनीतिक एवं राजनीतिक संस्थाएं, विकास पब्लिशिंग हाऊस नई दिल्ली. 1993 पृ. सं 513

[6]. International encylopadia of social science, New York, Macmillan 1968 Page No. 358

[7]. कोरी एवम् इब्राहिम, लोकतात्रिक, सरकार के अंग, 3rd Edition न्यूयार्क ओक्सकोर्ट यूनिवर्सिटी प्रेस 1953

[8]. कश्यप डॉ सुभाष, संविधान की आत्मा, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली 1978 पृ.सं. 76–77

[9]. सी.बी. गेना तुलनात्मक राजनीतिक एवं राजनीतिक, विकास पब्लिश िंग हाउस नई दिल्ली, 1999 पृ.सं. 515

[10]. कोठारी, रजनी (2017), भारत में राजनीति कल और आज, वाणी प्रकाशन दरियागंज, नई दिल्ली, पृ.सं.– 180.

[11]. लक्ष्मीकान्त, एम. (2017), 'भारत की राज्यव्यवस्था', ऑरिएंट ब्लैक स्वान, प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद, पृ.सं.–13.2.

[12]. अनुज कुमार अग्रवाल, (फरवरी 2015), श्संघ व राज्यों के आर्थिक संबंधों की पुर्नव्यवस्था, सूचना एंव प्रसारण मंत्रालय, प्रकाशन विभाग, योजना पत्रिका, नई दिल्ली, पृ.सं.– 48.

[13]. कोठारी, रजनी (2019), 'भारत में राजनीति', ओरियंट ब्लैक स्वान प्राइवेट लिमिटेड, हैदराबाद, पृ. सं. – 110.

[14]. जैन, पुखराज एंव वाजपेयी, अरूणोदय (2019), 'स्वतंत्र भारत में राजनीति', साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, पृ.सं.– 230 – 232.

[15]. सईद, एस. एम. (2008), भारतीय राजनीतिक व्यवस्थाश भारत बुक सेण्टर, लखनऊ, पृ.सं. –235–237.

[16]. राय, राकेश (1998), भारत में शासन पद्धति एंव राजनीति दलों की भूमिका, विवेक प्रकाशन, मेरठ, पृ.सं.– 26

[17]. जैन, पुखराज एंव वाजपेयी, अरूणोदय (2019), स्वतंत्र भारत में राजनीति, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, पृ.सं. – 250–254.

[18]. वही.......... पृ.सं.– 258.

[19]. मिश्रा, पी.एन. (2003), श्सत्ता का गलियारा, सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, पृ.सं. – 76.

[20]. तापल, बी. बी. (2000), श्भारतीय राजनीतिक व्यवस्थाश, सुल्तानचन्द्र एण्ड सन्स, नई दिल्ली, पृ.सं. – 97.

[21]. डॉ. राजकुमार (2006), श्शासन और राजनीतिश रोशन ऑफ सेन्टपीटर्सश, प्रिन्टवैल पब्लिशर्स, जयपुर पृ.सं. – 44.

[22]. जैन, धर्मचन्द्र (1999), श्भारतीय राजनीति (इंदिरा से राजीव तक), प्रिन्टवैल पब्लिशर्स, जयपुर पृ.सं. – 86.

[23]. वही......... .पृ.सं.–90–97.

[24]. मिश्रा, पी.एन. (2003), 'सत्ता का गलियारा', सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, पृ.सं.– 102–105.